AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

वर्तमान युग में स्मृतिशास्त्रीय जीवनमूल्यों की प्रासङ्गिकता

ORIGINAL ARTICLE

Author
डॉ. पुष्पा देवी
सहायक आचार्य संस्कृत,
(विद्या संबल योजना)
राजकीय महाविद्यालय
छोटी सरवन, बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

शोध सार

भारतीय संस्कृति में आधारशिला हैं–वेद। वेदों की सारगर्भित बातों को लेकर जनजीवन को सुव्यवस्थित करने के लिए महनीय प्रयत्न किया है–स्मृतिग्रन्थों ने स्मृतिशास्त्रों की जितनी प्रासङ्गिकता प्राचीन काल में थी, उससे कहीं अधिक प्रासङ्गिकता वर्तमान युग में दृष्टिगोचर होती है। वर्तमान युग के जनजीवन में नैतिकता का हास, राजनैतिक शुद्धता का अभाव, सामाजिक मूल्यों का अनादर, व्यसनों का व्यामोह, आचार–विचार की अशुद्धता सर्वत्र हावी होती जा रही है। स्मृतियों में इन प्रासंगिक सन्दर्भों के लिए अनेक उपदेश तथा सन्देश दिये गये हैं, जिनको आत्मसात् करके वर्तमान युग के जनजीवन को सही दिशा प्राप्त हो सकती है।

मुख्य शब्द

भारतीय संस्कृति, वेद, संदेश, युग.

स्मृतियों में वर्णित नैतिक मूल्य

स्मृतियों की प्रामाणिकता का आधार वेद ही है।[1] महाभारत में धर्म के लक्षण में सदाचार, स्मृति का वेद इन तीनों को प्रमाण माना गया है, किन्तु अत्यन्त प्रसिद्ध तथा प्राचीनतम स्मृति मनुस्मृति में चतुर्थ प्रमाण 'आत्मा' के औचित्यपूर्ण साक्ष्य मिल जाते हैं। मनु ने अपने स्मृति ग्रन्थ में शिक्षा, स्वराज्य, राजनीति, परिवार तथा समाज सम्बन्धी अनेक समस्याओं की चर्चा करते हुए चारों वर्णों तथा आश्रमों के कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों पर विचार किया गया है इसीलिए मनुस्मृति सामाजिक व्यवस्था–विज्ञान की एक उत्तर रचना मानी गयी है। अन्य स्मृतियों में देश, काल, परिस्थितियों पर आधारित तथा कुछ परिवर्तनों के साथ वैसे ही सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं। स्मृतियों में साधारण तथा विशिष्ट दोनों के धर्मों का विश्लेषण मिलता है। साधारण धर्मों में सत्य, दया, इन्द्रिय–संयम, अहिंसा, गुरुसेवा, आर्जव, अप्रमाद, आतिथ्य, तीर्थयात्रा, ध्यान, सन्तोष, विषय–तितिक्षा, सहानुभूति, ज्ञान सब प्राणियों में आत्मभाव, अस्तेय, नम्रता शास्त्र विहित कर्म आदि गुणों को लिया गयाहै। भारतीय नीति में स्वकेन्द्रित, परकेन्द्रित तथा ईश्वर केन्द्रित कर्त्तव्यों को पूरी मान्यता प्राप्त है। तीन ऋणों की भावना तथा उनसे उऋण होने के लिए स्मृत्यनुमोदित कर्म भी व्यक्ति के स्वकेन्द्रित तथा समाजकेन्द्रित कर्त्तव्यों के परिचायक है।

भारत में सदैव नैतिक मूल्यों को धर्म और दर्शन के अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। अतः इनके पृथक् अध्ययन की आवश्यकता भी अनुभव नहीं की गई है:

It is a fact in India ethics was always regarded as part of Philosophy and religion and hence it was never thought necessary to study it separately.[2]

स्मृतिशास्त्रों में सामाजिक जीवनमूल्य

भगवद्गीता में जहाँ गुण एवं कर्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र इन चार वर्णों का सर्जन मान्य है–''चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।''[3] वहाँ मनुस्मृति में इन चार वर्णों के कर्म का विधान किया गया है,[4] किन्तु वर्णों के अनुसार कर्म का विधान धीरे–धीरे जातिगत (जन्मना) विधान बनता गया, गुणों का आधार गौण हो गया। स्मृतियों के आधार पर सदियों तक समाज की व्यवस्था चली, वे मानव के व्यवहार की नियामक बनीं, उनके नियमों से न कोई राजा का विरोध था और न ही समाज का। आज भी प्रायः समाज की व्यवस्था स्मृतियों के अनुसार ही संचालित हो रही है, तथापि इस युग में उस व्यवस्था के विरोध में आवाज उठी है। विरोध होना स्वाभाविक भी था, क्योंकि अन्त्यजों के साथ धीरे–धीरे अस्पृश्यता का भाव जुड़ गया, जो मानव–मानव के बीच सद्भाव का समापन करने वाला था। यह उल्लेखनीय है कि शूद्रों के प्रति अस्पृश्यता का प्रावधान मनुस्मृति में कहीं भी नहीं हुआ है। यह समाज–व्यवस्था का उत्तरकालीन परिणाम है।

स्मृतिशास्त्र मानव–व्यवहार एवं समाज के नियामक शास्त्र रहे हैं, वे लोगों के मानस–पटल से विस्मृत होते जा रहे हैं। आज मानवीय रिश्तों के मायने बदल गये हैं। रिश्ते मूल्यकेन्द्रित नहीं अर्थकेन्द्रित होते जा रहे हैं। ऐसे में यह जानना आवश्यक है कि प्राचीन धर्मशास्त्र के रूप में विश्रुत स्मृतिशास्त्रों की आज भी कोई मूल्यवत्ता है या नहीं।

स्मृतिशास्त्रों का अनुशीलन करने पर विदित होता है कि स्मृतियों में ऐसे बहुत से सामाजिक मूल्य हैं, जो बदलते समाज के व्यवस्थित संचालन में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

कर्त्तव्यनिष्ठा

जिसे जो मान्य कार्य मिला है, उसे वह कार्य निष्ठापूर्वक करना चाहिए। अध्यापन कार्य में लगे ब्राह्मण में लगे ब्राह्मण के लिए कहा है:

सर्वान्परित्येजेर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः।
यथा तथाऽध्यापयंस्तु सा हास्य कृतकृत्यता।।[5]

जो स्वाध्याय के विरोधी कार्य हैं, उन सबको छोड़ देना चाहिए तथा अध्यापन कार्य को कठिन परिस्थितियों में भी पूर्ण करना चाहिए, यही अध्यापक की कृतकृत्यता है। वर्तमानकालीन अनेक अध्यापक, जो अध्यापन के साथ व्यापारिक क्षेत्र में उतर जाते हैं, उनके लिए मनुस्मृति की यह अच्छी सीख है। क्षत्रिय राजाओं के कर्त्तव्यपालन का पुरस्कार स्वर्ग है। मनु ने कहा है:

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात्।
नरेन्द्राम्रिदिवंयान्ति, प्रजापालनतत्पराः।।[6]

अर्थात् प्रजापालन में तत्पर राजा आर्यपुरुषों (सदाचारियों) की रक्षा एवं चोर, व्यभिचार आदि समाज–कण्टकों की शुद्धि करके स्वर्ग में जाते हैं। जो तस्कर आदि कण्टको को दूर नहीं करता और प्रजा से कर लेता है, उस राजा का राज्य क्षुब्ध हो जाता है तथा राजा को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती। राजा के कर्तव्यों की गणना अत्रिस्मृति में नियमानुसार की गई:

दुष्टस्य दण्डः सुजनस्य पूजा, न्यायेन कोशस्य च सम्प्रवृद्धिः।
अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्ररक्षा, पंचौव यज्ञाः कथिताः नृपाणाम्।।[7]

दुष्ट को दण्ड सज्जन को सम्मान, न्याय से कोश की वृद्धि, याचकों के प्रति अपक्षपात एवं राष्ट्र की रक्षा राजाओं के ये पाँच यज्ञ कहे गए हैं। इस प्रकार स्मृतिशास्त्रों में विभिन्न वर्णों के जिन कर्त्तव्यों का विधान किया गया है, उन्हें निष्ठा से पूर्ण करने की भी प्रेरणा की गई है तथा उनके हितावह फलों का भी निरूपण किया गया है।

वृद्धों की सेवा

वृद्धसेवा की प्रेरणा करते हुए मनुस्मृतिकार कहते हैं:

वृद्धांश्च सेवेत, विप्रान्वेदविदः शुचीन्।
वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते।।[8]

वृद्धसेवा का तात्पर्य मात्र उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं है, अपितु उनसे चर्चा और विचार–विमर्श भी वृद्धसेवा है। वृद्धों की सेवा करने वाला व्यक्ति राक्षसों द्वारा भी पूजा जाता है, अर्थात् क्रूर प्रकृति वाला व्यक्ति भी उसके इस कार्य से प्रभावित होकर विनम्र व्यवहार करने लगता है। मनुस्मृति में नब्बे वर्ष से अधिक आयु वाले शूद्र को ब्राह्मणादि तीन वर्णों द्वारा सम्मान्य बताया गया है–''मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं मतः।'' वृद्धों को अभिवादन करने एवं उनकी सेवा करने वाले के आयु, विद्या, यश एवं बल की वृद्धि होती है।[9]

विनय का आचरण

विद्या–प्राप्ति के लिए तो विनय का महत्त्व होता ही है, किन्तु विनय का आचरण राज्य प्रशासन में भी आवश्यक होता है। मनुस्मृतिकार कहते हैं – ''विनीतात्मा हि नृपति विनश्यति कर्हिचित्।''[10]

जो राजा विनययुक्त होता है, वह कभी नष्ट नहीं होता है। अविनय के कारण वेन, नहुष, पिजवन के पुत्र सदा, सुमुख और नेमि राजा नष्ट हो गये, जबकि विनय के कारण पृथु और मनु ने राज्य, कुबेर ने धन एवं ऐश्वर्य तथा विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया।[11] अविनय जहाँ राजाओं के विनाश का कारण बनता है, वहाँ विनय वनस्थ राजाओं को भी राज्य की प्राप्ति करा देता है।[12]

प्रशस्त सङ्कल्प

भगवद्गीता आदि ग्रन्थों में निष्काम होने की प्रेरणा है, जबकि मनुस्मृति में सकामता का समर्थन है:

कामात्मता न प्रशस्ता, न चौवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः।।[13]

ठीक है फल की अभिलाषा करना अच्छा नहीं है, किन्तु अकामता भी अच्छी नहीं है, क्योंकि वेद का अध्ययन भी इच्छा से होता है तथा वैदिक कर्मयोग भी इच्छा से ही सम्भव है। इच्छा के मूल में सङ्कल्प से उत्पन्न होते हैं, व्रत और समस्त यमधर्म भी सङ्कल्प से होते हैं। बिना इच्छा या सङ्कल्प के मनुष्य की कहीं भी कोई क्रिया दिखाई नहीं देती है। जो–जो भी मनुष्य करता है, वह उसकी इच्छा की चेष्टा है:

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः।।
अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किंचित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्।।[14]

सामाजिक सन्दर्भ में सम्यक् सङ्कल्प का होना आवश्यक हैं। समाज का अभ्युदय सम्यक् सङ्कल्प से सम्भव है, क्योंकि प्रत्येक कल्याणकारी कार्य के लिए तदनुरूप सङ्कल्प अपेक्षित है। अतः यह भी एक सामाजिक मूल्य है। सम्यक् सङ्कल्प को धर्म का मूल कहा गया है: ''सम्यक् सङ्कल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्।''[15]

व्यसनों का त्याग

व्यसन विपत्ति के घर हैं। किसी भी वर्ण अथवा जाति का व्यक्ति क्यों न हो उसे व्यसनों से दूर रहना चाहिए, क्योंकि व्यसन स्वयं उसके एवं परिवार के जीवन को बर्बाद कर देते हैं। मनुस्मृति में दशा कामज एवं आठ क्रोधज व्यसन निरूपित हैं:

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयते।।[16]

व्यसनों का अन्त बुरा है, इसलिए उन्हें प्रयत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिए। कामज व्यसन हैं–1. मृगया, 2. जुआ, 3. दिवानिद्रा, 4. परनिन्दा, 5. स्त्री–सम्भोग, 6. मद्यपाप, 7. नृत्य, 8. गीत, 9. वादित्र, 10. वृथा भ्रमण।[17] ये दश प्रकार के व्यसन व्यक्ति को कदाचित् अपने असली लक्ष्य से भटका सकते हैं, इसलिए त्याज्य हैं। क्रोधज व्यसन हैं–1. चुगलखोरी,2. दुस्साहस, 3. द्रोह, 4. ईर्ष्या, 5. असूया, 6. अर्धदोष (दूसरों काधन हड़प लेना, धरोहर वापस न करना), 7. कठोर वचन, 8 कठोर दण्ड।[18] उपर्युक्त कामज एवं क्रोधज व्यसनों का मूल भी लोभ है, अतः लोभ पर विजय प्राप्त करनी चाहिये।[19] व्यसन मृत्यु से भी अधिक कष्टकारी है, क्योंकि व्यसन नरक का और अव्यसन स्वर्ग का कारण बनते हैं:

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः।।[20]

व्यसनों के वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक प्रभावों से आज अधिकतर लोग परिचित हैं।[21] कई परिवार इन व्यसनों के कारण नारकीय जीवन जीते हैं। आर्थिक दृष्टि से एवं सामाजिक दृष्टि से भी वे पिछड़े रहते हैं।[22]

आचरण में निर्मलता

स्मृतिशास्त्र में मानव को दोष रहित आचरण करने के लिए प्रेरित किया गया है। मन, वचन एवं कर्म तीनों में निर्मलता का संदेश स्मृतियों में प्राप्त होता है। मनुस्मृति कहती है – ''सत्यपूतां वदेद्वाचं, मनःपूतं समाचरेद्'' ।[23] झूठा साक्ष्य देने का स्मृतियों में निषेध है, ताकि सामाजिक न्याय की रक्षा हो सके:

सत्येन पूयते साक्षी, धर्मः सत्येन वर्धते।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः।।[24]

सत्य ऐसा भी नहीं बोलना चाहिए, जो अनर्थ का कारण है। इसलिए मनुस्मृतिकार ने प्रिय सत्य बोलने का निर्देश किया है। सत्य तो बोले, किन्तु इस ढंग से नहीं, कि जो कलह एवं द्वेष का कारण बने।

परिवार में बड़ों के प्रति आदर की दृष्टि को मनुस्मृति में महत्त्व दिया गया है तथा पर नारी के सेवन को त्याज्य बताया गया है। मनुस्मृति में परनारी–सेवन को आयु घटाने वाला बताते हुए कहा है:

नहीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्।।[25]

ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी गुरुपत्नी के सदृश आदरणीय तथा कनिष्ठभ्राता की पत्नी को पुत्रवधू के तुल्य समझने की प्रेरणा स्मृति में की गई है:

भ्रातुर्ज्येष्ठ भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा।
यवीयस्तु या भार्या, स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता।।[26]

आचार को स्मृतियों में परमधर्म प्रतिपादित करते हुए उसका सामाजिक दृष्टि से भी महत्त्व स्थापित किया गया है, यथा:

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च।।[27]

दुराचारी पुरुष लोक में निन्दित, दुःखभागी, रोगग्रस्त एवं अल्पायु होता है। षड्वेदा सहित वेद के अध्येता का भी यदि आचार निर्मल न हो, तो उसे मृत्युकाल में वेद उसी प्रकार छोड़ देते हैं, जैसे ताप से तपने पक्षी उस घौंसले को छोड़ देते हैं:

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः यद्यप्यधीता सह षड्भिरङ्गैः।
छंदास्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति, नीडं शकुन्ता इव तापतप्ताः।।[28]

गुणग्राही एवं सकारात्मक दृष्टि

मनुस्मृति में व्यक्ति एवं समाज के स्वच्छ एवं व्यवस्थित संचालन का प्रतिपादन है, अतः वहाँ सकारात्मक चिन्तन एवं गुणग्राही दृष्टि पर बल दिया गया हैः

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम्।।[29]

विष में से अमृत, बाल व्यक्ति से सद्ववचन, शत्रु से सद्व्यवहार और गंदगी से स्वर्ण ग्रहण करने की प्रेरणा कर मनुस्मृतिकार ने व्यक्ति को गुणग्राही एवं सकारात्मक बनने का मार्ग प्रशस्त किया है।[30]

समाज का उत्थान तभी सम्भव है जब उसकी गुणग्राही एवं सकारात्मक दृष्टि हो।[31]

धनार्जन में शुद्धि

समाज प्रायः अर्थार्जन में अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार से दूषित होता है। मनुस्मृति में अर्थार्जन की शुद्धता को श्रेष्ठ शुद्धि कहा गया हैः

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।।[32]

प्रायः अपवित्र वस्तुओं की मिट्टी एवं जल से शुद्धि की जाती है, किन्तु मनुस्मृतिकार के अनुसार सब शुद्धियों में अर्थशुद्धि श्रेष्ठ है। जो अर्थार्जन में शुद्ध है, वही शुद्ध है, मिट्टी एवं जल से शुद्ध वस्तुतः शुद्ध नहीं। मनुष्य के लिए गंगा आदि में स्नान जल से शुद्धि का उदाहरण है तथा तीर्थयात्रा आदि मिट्टी से शुद्धि के निदर्शन हैं, किन्तु इनसे हुई शुद्धि का वह महत्त्व नहीं जो अर्थार्जन में शुद्धि का है। मनुस्मृतिकार का यह संदेश समाज को दूषित करने वाले उन लोगों के लिए है, जो अर्थलोभ के कारण भ्रष्टाचार में लिप्त होते हैं तथा नैतिक मानदण्डों के ताक पर रखकर अन्य लोगों को भी उस ओर आकर्षित करते हैं। ब्राह्मण की जीविका के लिए मनु ने स्पष्ट कथन किया है कि वह अकुटिल, अदुष्ट एवं शुद्ध जीविका को अपनाए तथा उसके लिए कभी लोक–व्यवहार का अनुसरण न करें।

राजा के लिए कहा हैः

यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भयो धनागमम्।
तत्र कालेन जायन्ते, मानवा दीर्घजीविनः।।[33]

जहाँ राजा पापी व्यक्तियों से धनागम का निषेध रखता है, उसके राज्य में मनुष्य दीर्घजीवी होते हैं। अभिप्राय यह है कि काला धन राज्य के लिए भी सुखकर नहीं होता है। वह अनीति एवं अन्याय को बढ़ावा देता है। यदि राजा महापापी के धन को ग्रहण करता है, तो उसके लोभ के कारण वह भी उस दोष से लिप्त हो जाता है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि मनुस्मृति में राजा की आय की शुद्धता पर भी बल दिया गया है।

भोगवाद पर अंकुश

आज उपभोक्ता संस्कृति के अन्तर्गत भोगवाद को बढ़ावा मिल रहा है, जिसका परिणाम है – व्यक्ति का असन्तोष एवं समाज का विघटन। मनुस्मृति में स्पष्ट कहा है कि कामनाओं की शान्ति उनके उपभोग से नहीं होती है, अपितु जिस प्रकार हवि डालने से अग्नि बढ़ती है, उसी प्रकार कामनाओं की पूर्ति से कामनाओं की वृद्धि होती हैः

न जातु कामः कामनामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।[34]

इन्द्रियों को जो नियन्त्रित नहीं करता, वह निश्चित ही दोष को प्राप्त होता है तथा उनको नियन्त्रित करने वाला सिद्धि को प्राप्त करता है।[35] यदि पाँच इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय विषयासक्त रहती है, तो उससे मनुष्य की

प्रजा उसी प्रकार नष्ट होती रहती है, जिस प्रकार छिद्रयुक्त मशक से जल बह जाता हैः

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम्।।[36]

इसलिए समस्त कार्यों की सिद्धि करनी है, तो मन को एवं इन्द्रियों को संयमितकरना अपेक्षित हैः

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्ततुम्।।[37]

तृष्णा पर संयम

मनुस्मृति में ब्राह्मण को सन्तोषवृत्ति अपनाने की प्रेरणा की गई है, क्योंकि सन्तोष ही सुख का मूल है एवं तृष्णा दुःख का मूल हैः

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः।।[38]

ब्राह्मण के लिए कहे गये इस वचन को ज्ञान की समृद्धि से जोड़ना चाहिए। स्वाध्याय में संलग्र सरस्वती का उपासक यदि लक्ष्मी के पीछे भागने लगा, तो उससे स्वाध्याय छूट जाएगा तथा ज्ञान भी दूषित हो जाएगा, किन्तु उपर्युक्त कथन सामान्यतः सभी मनुष्यों परलागू होता है। तृष्णा तो दुःख का मूल है, अतः सुख का निवारण करने के लिए सदसद् विवेक स्वरूप ज्ञान को जीवन में अपनाकर सन्तोषवृत्ति को जीवन में स्थान देना चाहिए।

अतिथि–सेवा

सामाजिक सम्बन्धों के सौहार्द्र एवं सामञ्जस्य में अतिथि सेवा की भी अपनी भूमिका है। इससे दूसरों के प्रति व्यक्ति के व्यवहार में परिष्कार आता है। सहिष्णुता, उदारता एवं समायोजन जैसे सामाजिक मूल्यों में वृद्धि होती है। भाग–दौड़ आधुनिक युग में सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूप बदल रहे हैं। अतिथि सेवा भी औपचारिक बनती जा रही है या उससे बचने का प्रयास रहता है। पति–पत्नी जब दोनों कार्य पर जाते हों, तो अतिथि सेवा में कटौती स्वतः हो जाती है। पराशर स्मृति में प्रतिपादित है कि जिसके द्वार निराश होकर लौटता है, उसके पितर एक हजार वर्ष तक प्रदत्त अन्न का भक्षण नहीं करते हैं।[39]

शोषण का विरोध

वह समाज आदर्श समाज नहीं जहाँ एक–दूसरे का शोषण किया जाता हो। स्मृतिशास्त्रों में शोषण के विरोधी विचार का अनुमान निम्नांकित श्लोक में ही हो जाता हैः

क्षुधितं तृषितं श्रान्तं बलीवर्द्धन योजयेत्।
हीनाङ्गं व्यथित वृषं विप्रो न वाहयेत्।।[40]

जो बैल भूखा प्यासा, थका हुआ हो, उससे हल नहीं जोतना चाहिए। हीन अंग वाले, रोगी एवं नपुंसक बैल को वाहन में नहीं जोड़ना चाहिए।

प्रायश्चित्त–विधान

विभिन्न दोषों की शुद्धि के लिए स्मृतियों में प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। प्रायश्चित्त का विधान मनोवैज्ञानिक उपाय है, जो व्यक्ति की तपस्या आदि से शुद्धि करता है। बिना इच्छा के जब पाप हो जाए तो उसके लिए विद्वानों ने प्रायश्चित्त कहा है तथा कहीं–कहीं जान–बूझकर किए पाप के शोधन के लिए भी प्रायश्चित्त कहा गया हैः

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः।
कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात्।।[41]

जहाँ प्रायश्चित्त से भी शुद्धि का प्रसङ्ग न हो वहाँ दण्ड का विधान है। जब व्यक्ति स्वयं पापकर्म से न रुके तो दण्ड ही उसका उपाय है–''न दि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापनिग्रहः।''[42]

इस प्रकार स्मृतिशास्त्र समाज की अशुभ एवं विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को रोकने के लिए अनेक सामाजिक मूल्यों का प्रतिपादन करते हैं।[43] आधुनिक समाज के शोधन एवं सामरस्य के स्थापन के लिए इन मूल्यों का महत्त्व है। ये व्यक्ति के निजी, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन के लिए आज भी अपनी मूल्यवत्ता लिए हुए हैं।[44]

निष्कर्ष

उपनिषदों, ब्राह्मणों और स्मृतियों में धर्म के सामाजिक पक्ष पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है और धर्म को मानवीय आचरण के मापदण्ड के रूप में स्वीकार करते हुए यह व्यक्त किया गया है कि धर्म 'व्यक्ति' और समाज दोनों के लिए उपयोगी है व दोनों का कल्याण सुनिश्चित करता है। इस प्रकार धर्म व्यक्तिगत आचरण व सामाजिक कर्तव्य दोनों का बोध कराता है। धर्म व्यक्ति के आध्यात्मिक व नैतिक विकास का तथा स्थिर, सुनियमित व सुसंचालित सामाजिक व्यवस्था का आधार बिंदु है।

सन्दर्भ सूची

1. तन्त्रवार्तिक, पृ.सं. 13–14।
2. Sharma I.C., (1975) *Ethical Philosophy of India*, Stanley M. Daugert, P.29- Revised Edition of 1975.
3. भगवद्गीता, 4.13।
4. मनुस्मृति, 1.87–91।
5. मनुस्मृति, 4.17।
6. मनुस्मृति, 9.243।
7. अत्रिस्मृति, 28।
8. मनुस्मृति, 7.38।
9. मनुस्मृति, 2.121।
10. मनुस्मृति, 7.39।
11. मनुस्मृति, 7.51–42।
12. मनुस्मृति, 7.40।
13. मनुस्मृति, 2.2।
14. मनुस्मृति, 2.3–4।
15. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.7।
16. मनुस्मृति, 7.45।
17. मनुस्मृति, 7.47।
18. मनुस्मृति, 7.48।
19. मनुस्मृति, 7.49।

20. मनुस्मृति, 7.53 ।
21. मनुस्मृति, 5.227 ।
22. मनुस्मृति, 11.93 ।
23. मनुस्मृति, 6.46 ।
24. मनुस्मृति, 8.83 ।
25. मनुस्मृति, 4.134 ।
26. मनुस्मृति, 9.57 ।
27. वशिष्ठस्मृति, 6.6 ।
28. वशिष्ठस्मृति, 6.3 ।
29. मनुस्मृति, 2.239 ।
30. मनुस्मृति, 5.107 ।
31. आपस्तम्बस्मृति, 10.5 ।
32. मनुस्मृति 5.106 ।
33. मनुस्मृति 9.246 ।
34. मनुस्मृति, 2.94 ।
35. मनुस्मृति, 2.93 ।
36. मनुस्मृति, 2.99 ।
37. मनुस्मृति, 2.100 ।
38. मनुस्मृति, 4.12 ।
39. पराशरस्मृति, 53 ।
40. पराशरस्मृति, 68 ।
41. मनुस्मृति, 11.45 ।
42. मनुस्मृति, 9/263 ।
43. ध्रुवाम्, भूमिम् पृथ्वीम् धृताम्, अथर्ववेद–11.17 ।
44. ऋग्वेद 4, 3, 9, 2, 12 ।

––==00==––